दीवार पत्रिका और रचनात्मकता

लेखक — महेश पुनेठा
अनुवादक — पूर्वा याज्ञनिक कुशवाहा
प्रकाशक — लेखक मंच प्रकाशन, गाज़ियाबाद
प्रकाशन वर्ष — 2015
पृष्ठ संख्या — 110
मूल्य — ₹80.00

शिक्षा हरेक का बुनियादी अधिकार है और इस अधिकार पर निजीकरण का हमला लगातार बढ़ रहा है। शिक्षा के बाज़ारीकरण के चलते ही सरकारी स्कूल लगातार बंद हो रहे हैं और गरीब से गरीब बच्चा निजी स्कूलों में पढ़ने के लिए बाध्य हो रहा है, तब ऐसे में हम कैसे उम्मीद करें कि बच्चों की रचनात्मकता में निखार आएगा?

फ़िर भी इस बाज़ारीकरण के दौर में कुछ ऐसे शिक्षक हैं जो शिक्षक होने के कर्तव्य को भली-भाँति निभा रहे हैं तथा सरकारी स्कूल में पढ़ रहे उन दलित, गरीब, ग्रामीण बच्चों की रचनात्मकता को निखारने का प्रयास कर रहे हैं। लेखक वर्तमान शिक्षा व्यवस्था पर भी चोट करते हैं कि यह व्यवस्था बच्चों को रचनात्मकता से दूर कर, बाज़ारवादी प्रतियोगिता के लिए तैयार कर रही है।

महेश पुनेठा ने अपनी किताब *दीवार पत्रिका और रचनात्मकता* में अपने तमाम शैक्षिक अनुभवों का समावेश किया है। वे आए दिन अपने स्कूली बच्चों के साथ *दीवार पत्रिका* के माध्यम से रचनात्मक गतिविधियों में शामिल रहते हैं। इस किताब में उन्होंने बच्चों की क्षमताओं को निखारने का सार्थक प्रयास किया है। साथ ही उन्होंने इसके लिए केवल *दीवार पत्रिका* का ही सहारा नहीं लिया, बल्कि समय-समय पर वो बच्चों के लिए कार्यशालाओं का आयोजन भी करते आए हैं। उन्होंने शिक्षा में बँधे-बँधाए मानदंडों को तोड़ने और बच्चों की स्वाभाविकता को निखारने का प्रयास भी किया है, क्योंकि बच्चों की यही स्वाभाविकता बड़ी मूल्यवान होती है। यह किताब यह भी बताती है कि वे बच्चों के प्रति, कितनी संवेदनशील एवं गहरी समझदारी रखते हैं।

लेखक कक्षा के हर काम को रोचक बनाने, कक्षा के वातावरण को बच्चों के अनुकूल बनाने एवं उनमें उत्साह पैदा करने वाली जगह को बदलने के लिए आतुर दिखाई देते हैं। यदि बच्चे फ़ेल हो रहे हैं, विद्यालय में नहीं आ रहे हैं या उद्दण्ड हैं तो उन कारणों तक पहुँचने की कोशिश करते नज़र आते हैं। कितने ऐसे अध्यापक हैं, जो बच्चों की शिक्षण

संबंधी समस्याओं पर बात करते होंगे? बहुत कम ऐसे अध्यापकों से हमारा वास्ता पड़ता है, बल्कि जब भी बच्चों के बारे में सुनाई देता है तो बच्चों को उद्दण्ड और खराब प्रवृत्ति का ही कहा जाता है। वे ऐसा व्यवहार क्यों कर रहे हैं, उन कारणों को जाने बिना बच्चों को उनके हाल में छोड़ देते हैं।

इस पुस्तक की शुरुआत ही उत्तराखंड राज्य के ज़िला पिथौरागढ़ के एक छोटे-से कस्बे राजकीय इंटर कॉलेज देवलथल के स्कूल से होती है और यहीं से लेखक की जिज्ञासा भी अपना विस्तार लेती है। ये बच्चे जो कभी भी अपनी किताबी दुनिया से बाहर नहीं गए हों, लेकिन स्कूल में *दीवार पत्रिका* के निकलने से वो बाहरी दुनिया से भी रू-ब-रू होते हैं।

जिन बच्चों को शिक्षक या समाज मूर्ख, बुद्धु कहकर नकारते हैं, वहीं लेखक उनके बालमन को समझते हुए, उन्हें शैक्षिक रचनात्मक गतिविधियों में लगाते हैं और निरंतर प्रयास करते हैं कि किस प्रकार बच्चों की प्रतिभा को उभारकर सामने लाया जा सकता है।

लेखक बच्चों को छोटी-छोटी कविताएँ, कहानियाँ, निबंध, लेख, यात्रा वृतांत, जीवन-प्रसंग, और अपने गाँव के आस-पास की रिपोर्टिंग तैयार करने को देते हैं और इनमें बच्चे खासी रुचि रखते हैं, साथ ही बच्चे अपनी रचनाओं को और भी बेहतर बनाने की कोशिश करते हैं, क्योंकि यही रचनाएँ *दीवार पत्रिका* में भी शामिल की जाती हैं।

यूनिट टेस्ट में वे बच्चों को उनकी रुचि के लेख लिखने को कहते हैं और बच्चे बालमन से बेहद रोचक प्रसंग भी लिखते हैं, जैसे— 'जब मुझे रोना आया', 'मेरी माँ', 'मेरी प्रिय कविता', ' हमारे गाँव का मेला' आदि।

इनमें से ही एक छात्रा सोनाली पांडेय ने 'मेरी प्रिय कविता' के बारे में लिखा है— ''मेरी सबसे अच्छी कविता का नाम 'एक बेहतर दुनिया के वास्ते' (बच्चों का घोषणा-पत्र) है। इस कविता में बच्चे सच्चे मन से पूछते हैं कि ये जो दुनिया हमें मिली है, क्या इसमें सच्चे मानव का जीवन मुमकिन है? बच्चे कहते हैं कि हमारी दुनिया में बच्चे भूखे क्यों मरते हैं? जबकि गोदामों में अन्न ठुंसा है, वो भी करोड़ों टन, वो अनाज किसी को क्यों नहीं मिलता? ज़हर उगलते कारखानों में दस-दस घंटे काम करने वालों के बच्चे पढ़ने-लिखने से वंचित हैं, वे बीमार होते हैं, तो उन्हें दवाई भी नहीं मिलती। दूसरी ओर जो कुछ नहीं करते, वे महल में मखमल में सोते हैं। इस दुनिया में ज़ुल्म, बेकारी, चोरी और लड़ाइयाँ क्यों होती हैं? बच्चे अपने दादाजी, पापाजी, गुरुजनों से पूछते हैं कि यह दुनिया बेहतर क्यों नहीं है? बच्चे कहते हैं कि हमें सच्चे मानव जैसा जीवन जीने लायक दुनिया चाहिए, या फिर उसे पा लेने की राह बताओ। उस रास्ते पर सीना तान कर आगे बढ़ना है हमें। मुझे यह कविता इसलिए अच्छी लगी, क्योंकि बच्चों ने इस कविता में देश प्रेम की भावना व्यक्त की है।''

बच्चों के इन लेखों से हमें पता चलता है कि बच्चे अपने आस-पास के वातावरण को किस रूप में समझते हैं। निश्चय ही अद्भुत होते हैं बच्चे।

दीवार पत्रिका का नाम *कल्पना* भी बच्चे खुद तय करते हैं। पत्रिका के संपादन से लेकर संपादकीय

लिखने तक की ज़िम्मेदारी भी बच्चे बखूबी निभा रहे हैं। पत्रिका में अलग-अलग स्तंभों की ज़िम्मेदारी भी बच्चों को रुचि के अनुसार ही बाँटी जाती है। बच्चे प्रत्येक अंक में कुछ नया करने की कोशिश करते हैं।

दीवार पत्रिका को नियमित करने से बच्चे लिखना सीख रहे हैं, अशुद्धियाँ कम-से-कम कर रहे हैं। जो बच्चे पहले स्कूल जाने में भी आना-कानी करते थे, अब वो भी इन रचनात्मक गतिविधियों में हिस्सा ले रहे हैं। लेखक उन बच्चों में भी संभावना ढूँढ लाते हैं, जिन्हें हमारा समाज, शिक्षक जड़-मूर्ख मानकर उनकी तरफ़ से ध्यान हटा देते हैं, लेखक की पैनी नज़र बच्चों की समझदारी को परखने में सफ़ल दिखाई देती है। खुद लेखक के शब्दों में—

एक ऐसे ही छात्र विजय कुमार टम्टा (जो पिछले वर्ष कक्षा नौ में अनुत्तीर्ण हो गया था और बहुत कम स्कूल आता है) की कहानी को पढ़कर हतप्रभ रह गया। उसने अपने गाँव के सबसे गरीब आदमी की कहानी लिखते हुए जिस तरह से गरीबी के दुष्चक्र को सामने रखा, किसी वयस्क से भी हम वैसी अपेक्षा नहीं कर सकते।

वर्तमान शिक्षा व्यवस्था बच्चों को उन्हीं किताबों में डूब जाने को कहती है, जिसमें सीखने को कुछ भी नया नहीं होता है और वह किताबें बच्चों को रट्टूमल तोता ही बनाती हैं और उन्हें अपने समाज की गतिविधियों, उसका मूल्यांकन करने की क्षमता से भी महरूम रखती हैं।

विद्यालयों का हमारे जीवन में क्या महत्व है, जॉन होल्ट अपनी किताब *शिक्षा की बजाय* में कहते हैं, ''स्कूल कही जाने वाली ज़्यादातर जगहें पढ़ाने वाले विद्यालय हैं। इनमें वे सारे प्राथमिक, माध्यमिक व अन्य विद्यालय शामिल हैं जिनमें लोगों को कानूनन जाना पड़ता है। इनमें लगभग सारे जूनियर कॉलेज, विश्वविद्यालय तथा ग्रेजुएट व व्यावसायिक स्कूल भी शामिल हैं जो प्रमाण-पत्र देते हैं। अधिकांश लोगों को समाज में जीने व काम करने के लिए इन प्रमाण-पत्रों की ज़रूरत होती है और इन्हें प्राप्त करने का कोई और तरीका नहीं है।''

लेकिन ये भी सच है कि ज्ञान केवल स्कूलों से ही प्राप्त नहीं किया जाता है, बल्कि जीवन का ज्ञान हमें अपने चारों तरफ़ के वातावरण से ही मिलता है। ज्ञान श्रम से ही पैदा होता है, ज्ञान मज़दूरों के हाड़-तोड़ मेहनत से पैदा होता है और ज्ञान किसानों के खेतों की बालियो में पैदा होता है और यही सच्चा ज्ञान मेहनतकश के पास होता है। अगर ऐसा नहीं होता तो मक्सिम गोर्की, प्रेमचंद, शैलेश मटियानी और गिरदा जैसे लेखक पैदा नहीं होते...।

दीवार पत्रिका को निकालने के लिए बच्चे खुद पहलकदमी करते हैं और शिक्षक खुद भी शैक्षणिक कामों में उनका साथ देते हैं। इन रचनात्मक गतिविधियों से बच्चों का ज्ञान तो बढ़ता ही है, साथ ही उन्हें नयी-नयी जानकारियाँ भी मिलती हैं। उनमें लेखन और अभिव्यक्ति की क्षमता के विकास के साथ ही पढ़ने के प्रति जिज्ञासा भी बढ़ती है।

इस किताब में *दीवार पत्रिका* के बाल संपादकों की बातचीत भी दी गई है। ये बच्चे उसी गंभीरता के साथ बातचीत रख रहे हैं, जैसे कोई अखबार का संपादक, लेखक, शिक्षक अपनी बात रखता हो।

दीवार पत्रिका लगभग चार दर्जन से अधिक स्कूलों में आरंभ की गई है। निश्चय ही यह महेश पुनेठा जी की मेहनत और बच्चों को कुछ नया देने की भरपूर कोशिश है और यह मुहिम लगातार ही बढ़ रही है। किताब के अंत में अलग-अलग जगहों के शिक्षक साथियों ने भी अपने अनुभवों को साझा किया है।

लेकिन क्या इस तरह की पत्रिका को निकालना और उसे निरंतर बनाए रखना आसान है, इसमें लेखक खुद कहते हैं–

''दीवार पत्रिका निकालना, प्रारंभ करना तो सरल है, लेकिन उसे निरंतरता प्रदान करना आसान नहीं है। जब चारों ओर रचनात्मकता विरोधी वातावरण हो, तब किसी भी रचनात्मक कार्य को करना आसान नहीं रह जाता है।''

ऐसे दौर में जब सारे बुनियादी अधिकार ब़ाजार के हवाले किए जा रहे हों और रचनात्मकता को भी मुनाफ़े में तब्दील किया जा रहा हो, तब महेश पुनेठा की ये मुहिम हमें आशा की किरण देती है—

'एक चिंगारी कहीं से ढूंढ लाओ दोस्तो,
इस दिए में तेल से भीगी हुई बाती।'

बिनीता उप्रेती
जे.पी.एफ़. अध्यापक शिक्षा विभाग
एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली-110016